प्रशासनिक विधि के अन्तर्गत प्रशासकीय विवेकाधिकार का न्यायिक पुनर्विलोकन

डॉ. अमित कुमार श्रीवास्तव*

सामान्यतः विवेक का अर्थ कई अनुकल्पों में से चुनाव करना होता है। परन्तु विवेक के पूर्व 'प्रशासकीय' विशेषण लगा है। अतः इसका विशेष मतलब निकाला जाता है। इस दृष्टिकोण से विवेक का अर्थ स्वयं की बुद्धि के अनुसार कार्य करने की शक्ति या अनेक अनुकल्पों में से स्वेच्छा के बगैर न्याय एवं औचित्यतता के सिद्धान्तों के अनुसार चुनाव करना। प्रशासकीय विवेक का तात्पर्य मनमर्जी, काल्पनिक या अनिश्चित प्रयोग नहीं है, बल्कि संतुलित, नियमित एवं विधिक होता है। प्रशासकीय विवेक का प्रयोग निश्चित मानदण्ड के बगैर नहीं होना चाहिए।

न्यायालय प्रशासकीय प्राधिकारी के निर्णय की जगह अपने निर्णय को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है।

विवेक किसी बात को निश्चित करने की शक्ति होती है, जिसके द्वारा झूठ एव ंसच, उचित एवं अनुचित, सार एवं छल की पहचान की जा सकती है।

प्रशासकीय विवेक एक तकनीक होती है, जिसका उपयोग अदालतों के नियंत्रण से बचना होता है। इस तरह की शक्ति में सामान्यतः निम्न प्रकार के वाक्याशों का प्रयोग होता है–''समाधान पर''–समाधान के हो जाने के बाद राज्य सरकार किसी व्यक्ति को निरूद्ध कर सकती हैः

''आवश्यकता या औचित्य के आधार पर''–अगर राज्य–सरकार आवश्यक या उचित समझती है, तो लोकहित में वह व्यक्तिगत सम्पति को अधिग्रहीत कर सकती हैः ''राय में''–अगर राज्य–सरकार की यह राय है कि कम्पनी के कृत्यों को उचित तरीके से नहीं किया जा रहा है, तब वह ऐसी कम्पनी के कृत्यों का अन्वेषण करवा सकती है। ''विश्वास करने का कारण''– अगर आयकर प्राधिकारी के पास विश्वास करने का कोई कारण है, तब वह आयकर को पुनः निश्चित कर सकता है।

'उपयुक्त', 'सुविधाजनक', 'व्यावहारिक', 'उचित', 'पर्याप्त' आदि शब्द विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए प्रयोग किये जाते है।

***असिस्टेन्ट प्रोफेसर, बी.एस.सी.,एलएल.एम.,नेट, डी.फिल् विधी विभाग, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय इलाहाबाद।**

इस तरह का वाक्यांशों का उपयोग कार्यपालिका को अदालतों के क्षेत्राधिकार से निर्मुक्त करना होता है।

कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती है, जहां पर मात्र परिस्थिति के अनुसार उसी स्थल पर निर्णय करना होता है। जैसे कि–बाढ़ का नियन्त्रण–एक नदी के किनारों पर गांव बसे हुए है, नदी में बहुत बाढ़ आ जाती है, अगर विधि द्वारा यह निर्धारित किया जाये कि प्रत्येक बारिश में या बाढ़ के आ जाने के समय गांव के लोगों को गांवों से निकाला जाये, तो यह उचित नहीं होगा, क्योंकि प्रत्येक बाढ़ एक ही तरह की नहीं होती है। अगर प्रशासकीय प्राधिकारी को विवेक के अनुसार गांव के लोगों को निकालने की शक्ति प्रदान कर दी जाये, जो बाढ़ के प्रकोप एवं उससे अनुमानित खतरे के आधार पर गांव को खाली करवायेगा। ऐसी दशा में प्राधिकारी के द्वारा निर्णय लिया जाना अधिक उत्तम है। अगर विधि प्राधिकारी के विवेक के बदले अपने विवेक को प्रयोग करके गांव को खाली करवाने का आदेश देगी तो विधि का प्रयोजन असफल हो जायेगा।

सुरेश जिन्दल बनाम ब्सेस राजधानी पाकर लि0[1] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहा कि –''संविधिक प्राधिकारी को अपनी विवेक–शक्ति का प्रयोग करते समय वे सारे कार्य करने चाहिए, जो संविधि के फायदे के लिए आवश्यक हो।''

भारत में प्रशासकीय प्राधिकारियों के द्वारा विवेकाधिकार के प्रयोग के मामले में न्यायालय निम्नलिखित परिस्थितियों में हस्तक्षेप करते है–

(1) विवेकाधिकार का प्रयोग नहीं किया गया, या

(2) विवेकाधिकार का अधिक्य या दुरूप्रयोग होने पर।

विवेकाधिकार का प्रयोग नहीं होने पर निम्नलिखित दशाओं के होने की सम्भावना होती है।

(a) प्राधिकारी के द्वारा अन्य के आदेश पर कार्य किया जाना।

(b) विवेक–शक्ति के साथ–साथ कर्त्तव्य का होना।

(c) प्राधिकारी द्वारा विवेक–शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना।

(d) सामान्यतः उप–प्रत्यायोजन मान्य नहीं होता है, परन्तु संविधि में अभिव्यक्त या विवक्षित प्रावधान होने परउप–प्रत्यायोजन मान्य नहीं होता है, परन्तु संविधि में अभिव्यक्त या विवक्षित प्रावधान होने पर उप–प्रत्यायोजन शुद्ध प्रशासकीय कार्य का हो सकता है।

(e) स्वगृहीत नीति के नियमों के अनुसार विवेक–शक्ति पर प्रतिबंध लगाना।

विवेकाधिकार का आधिक्य या दुरूप्रयोग होने पर इसका अनुमान निम्नलिखित परिस्थितियों में लगाया जा सकता है–

(i) प्राधिकारी के द्वारा संविधान की परिसीमा का उल्लघंन करके अधिकारिता का अतिक्रमण करने पर :

(ii) प्राधिकारी द्वारा संगत बातो को त्यागना एवं अंसगत बातों को ग्रहण करनाः

(iii) मिश्रित बातेंः कभी–कभी प्राधिकारी का आदेश पूरी तरह से विषयेत्तर या असंगत बातों पर आधारित नहीं रहता है। यह भागतः सुसंगत एवं उपस्थित बातों पर तथा भागतः असंगत एवं अनुपस्थित बातों पर आधारित होता है।

(iv) विवेक–शक्ति का अभाव होने पर, विवेक का प्रयोग शून्य होगा

(v) प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन होने पर।

(vi) असद्भावपूर्वक कार्य होने पर

(vii) अयुक्तियुक्त कार्य होने पर

(viii) अनुचित प्रयोजन : सांपार्श्विक उद्देश्य होने पर

(ix) विवेक–शक्ति का आभासी प्रयोग होने पर

हिमाचल प्रदेश सड़क परिवहन निगम और अन्य बनाम बृजलाल [2] के मामले में न्यायालय ने यह कहा कि – प्रशासकीय प्राधिकारी के निर्णय में न्यायालय को तब तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि ऐसा निर्णय असंगत नहीं हो या न्यायालय की अंतःश्चेतना को चोट न पहुँचता हो।''

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम चौधरी रनवीर सिंह और एक अन्य [3] के मामले में न्यायालय ने कहा कि–''नीति विषयक बातों पर निर्णय को सरकार के ऊपर छोड़ देना चाहिए, क्योंकि केवल सरकार ही पृथक्–पृथक् दृष्टिकोण से सभी सुसंगत पहलुओं पर विचार करने के बाद यह निर्णय ले सकती है कि कौन सी नीति को अपनाना चाहिए और कौन सी नही। अतः नये जिले के गठन से सम्बन्धित बाते ऐसी ही नीति विषयक बाते है।''

विधि मान्य प्रत्याशा का सिद्धान्त यह है कि किसी भी व्यक्ति को यह प्रत्याशा हो सकती है कि प्रशासकीय प्राधिकारी उसके साथ एक निश्चित आचरण करेगा, भले ही उनको विधिक रूप स ऐसे आचरण को कोई अधिकार नही हो।यह सिद्धान्त प्राकृतिक न्याय एवं युक्तियुक्तता के सन्दर्भ में विकसित हुआ है। विधि मान्य प्रात्यशा की सीमाए निम्नलिखित है–

1. यह केवल प्रक्रियात्मक है तथा इसका तात्विक असर नहीं है।
2. यह सिद्धान्त विधायी कार्यों पर प्रवर्तित नहीं होता है।
3. यह सिद्धान्त तब भी प्रवर्तित नहीं होता है, जब यह लोकनीति या राज्य सुरक्षा के विपरीत हो।

प्रशासकीय विवेक और मौलिक अधिकार – भारतीय संविधान द्वारा प्रदान किये गये मौलिक अधिकारों का उल्लंघन, प्रशासकीय प्राधिकारी नहीं कर सकते है। अनेकों मामलों में न्यायालय ने मौलिक अधिकारों के उल्लंघन होने पर प्रशासकीय कार्य को असंवैधानिक घोषित किया है। इस प्रकार मौलिक अधिकार

प्राधिकारी की विवेक शक्ति पर अंकुश लगाते है।

बगैर उचित एवं प्रभावी नियंत्रण के व्यक्ति अनुतोष नहीं प्राप्त कर सकता है, भले ही उस व्यक्ति के साथ अन्याय हुआ हो। ऐसी दशा ब्रिटिश एवं भारतीय विधिक प्रणालियों के उल्टी होगी जिसमें ''जहां अधिकार है।''[4] वहाँ उपचार है। उक्ति को बहुत लम्बे समय से अपनाया गया है। वास्तव में अधिकार एवं उपचार एक ही सिक्के के दो पहलू है, ये पृथक नहीं हो सकते है। कोई भी व्यक्ति जो प्रशासकीय प्राधिकारियों के प्रशासकीय कार्य से पीड़ित है, निम्नलिखित उपचार में से किसी को भी प्राप्त कर सकता है–

1. संविधानिक अनुतोष।
2. विधिक अनुतोष।
3. साम्या सम्बन्धी अनुतोष।
4. कॉमन लॉ के अनुतोष।
5. संसदीय अनुतोष।
6. स्वावलम्बन।
7. पीड़ित व्यक्ति उच्चत्तर प्रशासकीय प्राधिकारी के पास अपील कर सकता है, जहां पर विधि द्वारा ऐसा प्रावधान किया गया है।
8. राज्यों के लोक–आयुक्त के पास शिकायत करके उपचार प्राप्त किया जा सकता है।
9. केन्द्रिय सर्तकता आयोग, सी.बी.आई. और विभिन्न जांच आयोग के समक्ष की कार्यवाहियां भी पीड़ित व्यक्ति को उपचार प्रदान करती है।

1. सांविधानिक अनुतोष मे भारतीय संविधान के अन्तर्गत प्रशासकीय कार्य से पीड़ित व्यक्ति को निम्नलिखित अनुतोष प्राप्त है–

(a) परमाधिकार या असाधारण अनुतोष में ''परमाधिकार याचिका'' की वैज्ञानिक परिभाषा करना सम्भव कार्य नहीं है। तथापि जैसा कि इसके नाम से पता चलता है यह याचिका विशेष रूप से राजा से सम्बन्ध रखती है। राजा न्याय के हित में अपनी परमाधिकार एवं असाधारण शक्तियों का प्रयोग करता था। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 एवं 226 में क्रमशः सर्वोच्च न्यायालयों को रिट, निर्देश या आदेश जारी करने का अधिकार प्राप्त है।

(i) विलम्बन एवं ढिलाई होने पर।

(ii) वैकल्पिक उपचार होने पर।

(iii) तथ्य के विवादित प्रश्न पर।

(iv) तात्विक तथ्यों को छिपाये जाने पर।

(b) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 132 से 135 तक के प्रावधान उच्चतम न्यायालय की दीवानी एवं दाण्डिक मामलों में अपील करने की शक्ति से सम्बंधित है। अनुच्छेद 139–क के अर्न्तगत सर्वोच्च न्यायालय की, मामले की एक न्यायालय से अन्य न्यायालयों में अन्तरण करने या अपने पास मंगाने की शक्ति प्राप्त है।

(c) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 136 के अर्न्तगत उच्चतम न्यायालय को अपने विवेकानुसार भारत के राज्यक्षेत्र मे किसी न्यायालय या अधिकरण के द्वारा किसी वाद या मामले में पारित किये गये निर्णय डिग्री, अवधारणा, दण्डदेश या आदेश की अपील के लिए विशेष अनुमति देने की शक्ति प्राप्त है।

(d) लोकहितवाद का उद्देश्य लोकहित की वृद्धि एंव सुरक्षा करना है। यह बहुसंख्यक व्यक्तियों जो गरीब, सामाजिक या आर्थिक रूप से कमजोर है या विधि से अनजान है, उनकी रक्षा करना है।

न्यायालय को इस तरह के मामले में सावधान रहना चाहिए, क्योंकि इसकी आड़ में लोग अपने निजी हित या राजनैतिक लाभ प्राप्त कर सकते है। *नीतू बनाम पंजाब राज्य और अन्य*[5] के वाद में न्यायालय ने कहा कि –**''मुखौटाधारी छायापुरुषों (फेंटमो) के कुटिल प्रयोजन हेतु अपनी प्रक्रिया का दुरुपयोग करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए।''**

2. विधिक अनुतोष में निम्निलिखित अनुतोष है–

(a) दीवानी वाद– प्रशासकीय प्राधिकारी के आदेश से पीड़ित व्यक्ति सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 9 के अन्तर्गत दीवानी वाद दायर कर सकता है।

(b) प्राधिकरणों में अपील का प्रावधान होना – सीमा शुल्क अधिनियम, 1960 के अर्न्तगत, सीमा शुल्क कलेक्टर द्वारा जारी आदेश की अपील केन्द्रीय सीमा शुल्क एवं उत्पाद–शुल्क बोर्ड में एवं दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम, 1958 के अन्तर्गत किराया नियंत्रण प्राधिकारी के आदेशों से किराया नियंत्रण प्राधिकरण में अपील का प्रावधान है। इसी तरह से प्रतिलिप्याधिकार अधिनिय, 1957 के अन्तर्गत प्रतिलिप्याधिकार रजिस्ट्रार के आदेशों के खिलाफ प्रतिलिप्याधिकार बोर्ड में अपील की जा सकती है। अपील में सुनवाई तथ्य और विधि के प्रश्नों पर होती है।

(c) न्यायालयों में अपील का प्रावधान होना–प्रशासकीय कार्यों के विरूद्ध अपील उच्च न्यायालय में भी होती है। कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अन्तर्गत आयुक्त के आदेश की अपील ''विधि के तात्विक प्रश्न पर'' उच्च न्यायालय में होती है। आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 256 के अधीन न्यायाधिकरण के विरूद्ध उच्च न्यायालय में निर्देश हेतु जा सकते है। मोटरयान अधिनियम, 1988, के अन्तर्गत दावा अधिकरण के विरूद्ध उच्च न्यायालय में अपील हो सकती है।

3. साम्या सम्बन्धी अनुतोष – ये निम्न प्रकार से है–

(क) व्यादेश की कार्यवाही

(ख) घोषणात्मक डिक्री

(ग) क्षतिपूर्ति के लिए कार्यवाही।

4. कॉमन लॉ के अनुतोष –ब्रिटिश स्थिति के अन्तर्गत सरकार के संविदा–भंग एवं अपकृत्य से सम्बन्धित अनुतोष आते है। क्राउन प्रोसिडिंग ऐक्ट, 1947 के बाद राजा एक सामान्य वादकारी की स्थिति में आ गया है।

भारत की स्थिति यह है कि भारत में ''राजा गलती नहीं करता है।'' का सूत्र कभी भी स्वीकृत नहीं किया गया। संघ एवं राज्य विधिक व्यक्ति माने जाते है। प्रशासन के प्रतिकूल संविदात्मक दायित्व एवं अपकृत्यात्मक दायित्व हेतु वाद, भारतीय संविधान में भारत संघ एवं राज्यों के संविदात्मक एवं अपकृत्यात्मक दायित्व को स्वीकृति प्रदान की गयी है।[6] इस प्रकार प्रशासकीय कार्य राष्ट्रपति या राज्यपाल के नाम से निष्पादित होते है।

5. संसदीय अनुतोष – प्रशासकीय कार्य से पीड़ित व्यक्ति अपने क्षेत्र के सांसद को एक पत्र लिखकर अनुतोष प्राप्त कर सकता है। संसद सदस्य उस मामले को संसद में अनौपचारिक तरीके से हल करवा सकता है या सामान्य रूप से लोकसभा में प्रश्न करके या अपवादित मामलों में सदन में स्थगन प्रस्ताव ला करके उस मामले को उठा सकते है। सदस्यगण लोक महत्व के विषय से सम्बन्धित शिकायत को दूर करने के लिए मामले को जांच अधिकरण (साक्ष्य) अधिनियम, 1921 के अन्तर्गत जांत हेतु विशेष जांच न्यायालय गठित करने पर बल दे सकते है। परन्तु इसकी आलोचना यह हो सकती है कि अगर सांसद विरोधी दल का है तो वह मंत्री पर जबदस्त आरोप–प्रत्यारोपित करेगा, किन्तु शासक दल का होने पर उसका आरोप कम हो सकता है। इसके अलावा संसद सदस्य अक्सर अपने कार्यों में व्यस्त रहते हैं और जनता की शिकायत सुनने का समय उनके पर नहीं रहता है।

6. स्वावलम्बन – पीड़ित व्यक्ति को प्रशासकीय प्राधिकारी के अधिकारातीत आदेश का विरोध करने का अधिकार है। अगर विरूद्ध कार्यवाही होती है तो वह इस बात का तर्क दे सकता है कि प्राधिकारी का कार्य नियम या उपनियम के विरूद्ध है।

भारत में प्रशासनिक विधि के अन्तर्गत प्रशासकीय विवेकाधिकार का न्यायिक पुनर्विलोकन उस तरीके से नहीं हो पा रहा है जिस तरीके से संयुक्त राज्य अमेरिका में होता है। न्यायिक पुनर्विलोकन का सिद्धान्त हमारे सर्वोच्च न्यायालय ने संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान से ही लिया है, परन्तु आज तक इसका विकास संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह नहीं हो पाया है।

सन्दर्भ :–

1. (2008) एस0सी0 210 (निर्णय की तारीख 11–10–2007)
2. (2008) 1 से सि. नी. प. 431 (हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय)
3. (2009) 1 उम.नि.प. 23
4. 'उबी जस इबी रेमिडियम्' (व्हेयर देयर इज ए रॉन्ग देयर इज ए रेमिडी) 5. (2007) 2 उम.नि.प. पेज 229–230)
6. भारत का संविधान, अनुच्छेद 294, 298, 299 एवं 300